ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 202-204
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

कबीर की प्रेम– संवेदना

1. भारत राजोरा
2. डॉ0 दिग्विजय कुमार शर्मा

हिंदी विभाग, ओ. पी. जे. एस. विश्वविद्यालय, चूरू (राजस्थान) भारत

Received-29.05.2023, Revised-03.06.2023, Accepted-07.06.2023 E-mail: bharatrajora22@gmail.com

सारांशः ***कबीर के जीवन और काव्य की कसौटी वास्तव में केवल "प्रेम" है। सदियों से लोकमानस में व्याप्त यह शब्द साधारण नहीं, असाधारण है। असाधारण इसी अर्थ में है कि प्रेम को पा लेने वाला व्यक्ति संपूर्ण हो जाता है। "प्रेम" के अतिरिक्त फिर दुनिया में उसे किसी और चीज की जरूरत नहीं होती। उसके लिए सब कुछ संभव हो जाता है। सुख–दुख, जीना–मरना उसके लिए कोई मायने नहीं रखता। कबीर के शब्दों में–***

हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या?
रहे आजाद या जग में हमन दुनिया से यारी क्या?"[1]

कुंजीभूत शब्द– काव्य की कसौटी, लोकमानस, शब्द, असाधारण, सुख–दुख, जीना–मरना, होशियारी, आजाद, तत्कालीन समाज।

कबीर ने जिस "अनभै– सांचा" की घोषणा की थी, उसका सीधा संबंध इसी "प्रेम" से था। कबीर की दृष्टि में प्रेम ही जीवन का सबसे बड़ा सत्य है। शास्त्रों एवं धर्मों में प्रेम की अनेक व्याख्याएं हैं, लेकिन कबीर का प्रेम न किसी धर्म से लिया गया है, न किसी शास्त्र से। उनका प्रेम उनके अनुभव से उपजा है। आत्मबोध से बड़ा कोई बोध नहीं होता। कबीर ने जो कुछ भी कहा है, वह उनका भोगा हुआ यथार्थ है। अपने समय, समाज और जीवन का जो अनुभव उन्होंने किया, उसी को "निरपेक्ष सत्य" मानकर, निर्भय होकर समाज के सामने रखा और समाज ने उसे सहर्ष स्वीकार किया।

कबीर के समय में मनुष्य की पहचान के दो मुख्य आधार थे– धर्म और जाति। धर्म से वह मुसलमान या हिंदू था और जाति से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र। कबीर को मनुष्य की यह पहचान मान्य नहीं थी, इसीलिए उन्होंने तत्कालीन समाज में धर्म और जाति के नाम पर व्याप्त दुराग्रहों, कट्टरताओं और संकीर्णताओं का घोर विरोध किया। मनुष्य की पहचान उसकी मनुष्यता से है न कि धर्म और जाति से। यह "मनुष्यता" ही मनुष्य की असली पूंजी है। यह (मनुष्यता) जितना कबीर के समय में संकट में थी, उतनी ही आज भी है। कबीर के समय में "मनुष्यता" धर्म और जाति के नाम पर छली जा रही थी और आज उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण से पैदा हुई बाजारवाद से छली जा रही है। मनुष्य के अस्तित्व का संकट जितना कबीर के समय में था, उतना आज भी है। कबीर की साधना का साध्य मनुष्य को बचाना है, मनुष्यत्व की स्थापना है।

समाज में फैला हुआ विष जो मनुष्यता को निगल रहा था, कबीर उस विष को अमृत में बदलना चाह रहे थे , जिससे मनुष्य शाश्वतजिंदा रहे। विश्व को अमृत बनाना किसी टेक्नोलॉजी द्वारा संभव नहीं है। वह तो कबीर के अनुभव से निसृत प्रेम– साधना से ही संभव था। उन्होंने "कागज की छवि लेखी" को नकार कर "आंखिन देखी' के आधार पर स्पष्ट घोषणा की थी कि विश्व को अमृत में केवल प्रेम बदल सकता है––

"प्रेमी ढूंढत मैं फिरौं, प्रेमी मिला न कोय।
प्रेमी को प्रेमी मिले तो सब विष अमृत होय।।"[2]

कबीर के लिए प्रेम जीवन का सार है, जिस "निर्गुण राम" से राम को निरंतर जपने और पाने के लिए वे दुनिया से आग्रह करते रहे, वह वास्तव में केवल प्रेम का ही साक्षात्कार था। चाहे राम को पाने की बात हो, चाहे समाज को परखने की– कबीर की दृष्टि में दोनों का साधन प्रेम है। प्रेम ही उनका आदि है और प्रेम ही उनका अंत। प्रोफेसर मैनेजर पांडे का यह कथन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है– "कबीर ने जिस भीषण सच और उसकी भयावह संभावनाओं का साक्षात्कार किया था, उससे भारतीय समाज को बचाने के लिए वे एक ऐसे लोकधर्म का विकास करना चाहते थे, जिसका आधार प्रेम हो, क्योंकि प्रेम ऐसा भाव है जो मनुष्य को हर प्रकार के भेदभाव और विधिनिषेध से स्वतंत्र करता है, मनुष्य की मनुष्य का पोषक और स्वाधीनता का रक्षक भाव है, इसीलिए कबीर की कविता में प्रेम का अपार विस्तार है और असीम महत्त्व। सच पूछिए तो कबीर मूलतः प्रेम के ही कवि हैं। उनकी कविता में प्रेम लौकिक है और आध्यात्मिक भी, सामाजिक मूल्य है और व्यक्तिगत अनुभव भी, वह सामाजिक समता का प्रेरक है और व्यक्ति की नैतिक चेतना का मार्गदर्शक भी।"[3] (आलोचना अप्रैल–जून 2000 पृष्ठ 279) जो राम घट– घट में व्याप्त है, प्रत्येक प्राणी में है, उस राम तक पहुंचने का रास्ता केवल "प्रेम" है। "प्रेम मार्ग" पर चलना अथवा "प्रेम" को पा जाना राम को पाना है।

प्रश्न है कि इस "प्रेम मार्ग" पर चला कैसे जाय? अथवा राम को पाया कैसे जाय? "प्रेम" का प्राण– तत्व है समर्पण। कबीर का समर्पण किसी धर्म या राज– सत्ता के सामने नहीं, बल्कि उनके समक्ष है जो हर मनुष्य के अंदर है। अर्थात उनका समर्पण प्रत्येक व्यक्ति के लिए है। यह "समर्पण" आदमी को आदमी से जोड़ता है, परस्पर सद्भाव का संचार करता है। यह अलग बात है कि यह "समर्पण" एक कठिन साधना का विषय है, लेकिन इस अर्थ में आसान भी है कि इसमें न कोई बंधन है और न ही कोई आडंबर। यह सबके लिए सुलभ है। इसके लिए आवश्यक नहीं कि आप ब्राह्मण हों, ज्ञानी हों, योगी हों, काजी हों, मुल्ला हों अथवा राजा हो। प्रेम कोई भी कर सकता है और कोई भी पा सकता है, इसके लिए न किसी बहुत बड़े संसाधन की जरूरत है और न किसी बहुत बड़े आडंबर

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

की। कबीर की

दृष्टि में "प्रेम" को पाने के लिए, बस एक चीज की आवश्यकता है, वह है– अहंकार का त्याग।अहंकार को त्याग कर ही प्रेम अथवा राम को पाया जा सकता है। "प्रेम मार्ग" का सबसे बड़ा अवरोधक अहंकार है। अहंकार वास्तव में किसी भी सकारात्मक वृत्ति के लिए घातक है। कबीर के शब्दों में "प्रेम न बाजार में मिलता है न किसी बाड़ी में उगता है, वह तो आदमी के अंदर होता है, उसे तभी पाया जा सकता है जब अपने अंदर के अहंकार को पूरी तरह से मिटा दिया जाए–

" प्रेम न बारी ऊपजै, प्रेम न हाटि बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देइ लै जाय।।"[4]

कहने का अर्थ जो प्रेम पूरी दुनिया को एक साथ जोड़ सकता है, वह कहीं और नहीं, अपितु व्यक्ति के अंदर है। बस जरूरी है उस प्रेम को कबीर की तरह अनुभव कर जीवन के धरातल पर लाया जाए। समाज में मनुष्यत्व के विकास के लिए मनुष्य के हृदय में स्थित इसी "प्रेम" को कबीर जगाना चाहते थे, लोगों से उसका परिचय करना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने एक ओर जहां ईष्या, काम, क्रोध, भय, लोभ, कपट और पाखंड आदि का विरोध किया, वहीं दूसरी ओर प्रेम, करुणा, दया, उदारता, समता और अहिंसा जैसे हृदय के सकारात्मक भाव का उल्लेख कर समाज में उसको स्थापित किया। मन की निर्मलता को सर्वोपरि मानते हुए, उन्होंने समाज में व्याप्त बाह्य आडंबर और रूढ़ियों का खंडन किया। वे समाज में समता के पक्षधर थे। किसी प्रकार का भेदभाव उन्हें पसंद नहीं था। उनका मानना था कि एक ही नूर से संपूर्ण सृष्टि का विकास हुआ है, इसलिए न कोई छोटा है, न कोई बड़ा। "नूर" वही सर्वव्यापी राम है, जिसका एहसास कबीर सबको कराना चाहते थे। वह एहसास बिना "प्रेम" के संभव नहीं था, इसलिए कबीर ने अपनी साधना का आधार "प्रेम" को बनाया, यह वही "प्रेम" है जो मनुष्यता का पोषक है, भेदभाव का निराकरण है, स्वाधीनता का रक्षक है, सामाजिक समता का प्रेरक है और व्यक्ति में नैतिक चेतना को प्रकट करने की ताकत है। प्रेम केवल लौकिक और अलौकिक के भेद को ही नहीं मिटाता, बल्कि जीवन और मृत्यु के बीच निहित विरोध को भी समाप्त कर देता है। प्रेम में जीने और मरने का फर्क मिट जाता है। जिस मृत्यु से संसार डरता है, कबीर उसका स्वागत करते हैं–

"जा मरने से जग डरै, सो मेरे आनंद।
कब मरिहौं,कब देखिहौं, पूरन परमानंद।।"[5]

मृत्यु का यह आनंद प्रेम रस पीने वाले के लिए ही संभव है। कबीर ऐसे मनुष्य को इस संसार में व्यर्थ मानते हैं, जिनकी हृदय में प्रेम न हो। उन्हीं के शब्दों में–

"जिहिं घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहिं राम।
ते नर इस संसार मे उपजि षये बेकाम ।।"[6]

कभी–कभी यह प्रश्न उठाया जाता है कि जब कबीर मानवीय संवेदना के, मनुष्यता के, समता और प्रेम के संस्थापक थे, तो उन्होंने नारी की निंदा क्यों किया? प्रोफेसर पुरुषोत्तम दास अग्रवाल ने अपनी पुस्तक "अकथ कहानी प्रेम कीः कबीर की कविता और उनका समय" में इस प्रश्न को बड़ी गंभीरता से उठाया है। उन्होंने ने कहा है कि यह सत्य है कि कबीर ने कनक और कामिनी की निंदा की है, किंतु केवल इस आधार पर ही यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि कबीर नारी निंदक थे। यदि नारी निंदा करना ही उनका ध्येय होता तो स्वयं नारी बनकर अपने राम से प्रेम की याचना न करते। कबीर की साधना का "दांपत्य–रति" एक जबरदस्त रूपक है। स्त्री–पुरुष के संबंधों को कबीर की कविता नए सिरे से रचती है। संसार में भले ही स्त्री माया हो, लेकिन कविता के संसार में कबीर के लिए वही प्रेम की विधायिका, कर्ता और द्रष्टा है। प्रोफेसर पुरुषोत्तम अग्रवाल जी ने अपनी इसी पुस्तक में मिलान कुंदेरा के उपन्यास "इम्मारेटिलिटी" से यह कथन "स्त्री ही मनुष्य का भविष्य है– मतलब यह कि जो दुनिया पुरुष की में रची गई थी, अब स्त्री की छवि में रुपान्तरित होने को है। दुनिया जितनी तकनीकी, यांत्रिक, ठंडी और धातुवत् होती जाएगी, उसे ऊष्मा की जरूरत उतनी ही बढ़ती जाएगी– जो ऊष्मा केवल स्त्री दे सकती है। यदि हम दुनिया को बचाना चाहते हैं, तो हमें स्त्रीत्व अपनाना होगा। स्त्री की अगुवाई स्वीकार नहीं होगी। शाश्वत स्त्रीत्व को अपने आप में व्यापन देना होगा" को उद्धृत करते हुए कहा है कि– "कबीर की काव्य संवेदना वस्तुतः शाश्वत स्त्रीत्व को अपने आप में व्यापने देने के अंतः संघर्ष का मार्मिक साक्ष्य देती है। इस अंतस्संघर्ष में भाषा के दो मुहावरे आपस में टकराते हैं। रीति–रिवाज, धर्म– कर्म और प्रदत्त मर्यादा का पुरुषोन्मुख मुहावरा नारी निंदा कराता है, तो साधना का प्रेमोन्मुख मुहावरा कवि को नारी ही बना देता है।[7] कबीर की कविता एक ही साथ फंतासी और प्रेरणा दोनों बन जाती है। फंतासी की एक अभिव्यक्ति है– प्रदत्त सामाजिक संबंधों के मूल तर्क को स्पष्टतः नकारते हुए प्रेमपगी भक्ति की "रहनि" से स्पंदित संबंधों का उज्जवल लोक रचना। दूसरी अभिव्यक्ति है संस्कारगत नारी निंदा के बावजूद अपने इस अंतर्लोक में प्रेम को– उसकी उदात्त पीर को पूरेपन में जीने के लिए, प्रेम के लौकिक– अलौकिक विभाजन को व्यर्थ करने के लिए, उसमें उमगने और सकुचने के लिए कविता में स्वयं नारी बन जाना।"[8] 'हरि मेरा पिव, मैं हरि की बहुरिया' कहने वाले कबीर नारी के समर्पण भाव से जुड़ते हैं। पत्नी का एकनिष्ठ भाव जिस प्रकार अपने पति को प्रेम में बांधे रखती है, उसी प्रकार कबीर अपने राम को प्रेम में बांधे रखना चाहते हैं। "दाम्पत्य रति" का यह रूपक कबीर की कविता में व्याप्त है, इसीलिए प्रो0 पुरुषोत्तम अग्रवाल यह निष्कर्ष रूप में कहते हैं– "कबीर के सारे पदों, साखियों को यदि एक विराट रचना के रूप में पढ़ें, तो देखेंगे कि वह प्रेमाव्यक्ति के धरातल पर नारी की कविता है– नारी के बारे में कविता नहीं।"[9] नारी की कविता और कविता में नारी हो जाना, सिद्ध करता है कि कबीर नारी संवेदना के विरोधी नहीं थे। वे जहां खड़े थे और जहां से बोल रहे थे, वहां केवल प्रेम की वर्षा हो रही थी, वहां जीवन के किसी नकारात्मक भाव के लिए स्थान नहीं था। वह

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

केवल प्रेम की जलधारा थी। कबीर इसी जलधारा में नहा रहे थे और दुनिया को भी उसी जलधारा से नहलाना चाह रहे थे। गुरु की कृपा से ही कबीर को यह स्नान करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था––

"सतगुरु हम सूं रीझि करि कह्या एक प्रसंग।
बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग।।"[10]

उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से पैदा हुआ, जो बाजारवाद आज पूरी दुनिया में फैला है उसमें प्रेम जैसे शाश्वत मूल्य के लिए कोई जगह नहीं है। यहां महत्वपूर्ण केवल लाभ है। लाभ होना चाहिए बस, वह चाहे मानवीय मूल्यों को निगल कर आए या किसी की जिंदगी का विनाश करके– इसका कोई अर्थ नहीं, अर्थ है तो केवल लाभ से। लाभ का यह लोभ मनुष्यता का सबसे बड़ा शत्रु है। मनुष्यता जिस तरह आज बाजार की भीड़ में रौं दी जा रही है, उसी प्रकार कबीर के समय में धर्म और जाति के नाम पर रौंदी जा रही थी। कबीर का ध्येय मनुष्यता को बचाना था। मनुष्यता को बचाने के लिए जिस रास्ते पर चलने की जरूरत थी, कबीर ने दुनिया वालों को वह रास्ता दिखाया– वह रास्ता था प्रेम का। जीवन की सार्थकता बिना प्रेम के संभव नहीं है। कबीर का मानना था कि जिनके ह्रदय में न प्रेम है, न प्रेम का आस्वाद और जिनकी जिह्वा पर राम नाम भी नहीं है, वह मनुष्य इस संसार में व्यर्थ पैदा होकर नष्ट होते हैं। कबीर की साधना की कसौटी यही प्रेम था, जिसकी व्याख्या करते हुए प्रोफेसर पुरुषोत्तम अग्रवाल ने अपनी पुस्तक "अकथ कहानी प्रेम कीः कबीर की कविता और उनका समय" में कहा है कि "कबीर का प्रेम कोरी काव्यरूढ़ि या केवल भावदशा मात्र नहीं। उनके भाव– जगत और कवि– कर्म में प्रेम संवेदना भी है, अवधारणा भी। वे प्रेम के अनुभव को संज्ञानात्मक कर्म में रूपांतरित कर देते हैं– 'साधना के भीतर' का अद्भुत संसार हो या उसके 'बाहर' का समाज, कबीर भीतर– बाहर के निरंतर को देखते हैं प्रेम की आंख से। परखते हैं प्रेम की कसौटी पर। प्रेम ही उनका प्रस्थान है और प्रेम ही उनका प्रतिमान। अपने प्रेम– संज्ञान से ही कबीर दुनिया को देखते– परखते हैं। उनका 'निज ब्रह्म विचार' हो या उनकी सामाजिक आलोचनाय उनके अनुभव और अनभय प्रतिमानों की गंगा– जमुना को सींचने वाली अंतः सलिला, कबीर की सरस्वती है– प्रेम।" कबीर का प्रेम जीवन– जगत का प्रेम है। वह एकांत में डूब जाने वाला प्रेम नहीं है, वे जिस "निर्गुण राम" से प्रेम करते हैं, वह कण–कण में व्याप्त है, वह हर व्यक्ति के अंदर है। इसलिए प्रोफेसर पुरुषोत्तम अग्रवाल ने कहा है कि "कबीर प्रेम को संज्ञानात्मक कर्म बनाते हैं– इस संज्ञान में कामभावना– रामभावना–समाजभावना के बीच सतत निरंतरता का संबंध है। यह पहले, वह पीछे वाला प्राथमिकता– क्रम नहीं। अपने प्रिय राम से संवाद कबीर प्रेमानुभूति के पलों में भी करते हैं, सामाजिक आलोचना के पलों में भी।... कबीर की विशेषता यह है कि उनका प्रेम सत्ता`साधना नहीं है, वह अन्य के साथ प्रेम का संबंध बनाना भी है– व्यक्ति आत्म के रूप में भी, सामाजिक आत्म के रूप में भी।"[10]

कबीर की यह प्रेम– संवेदना जितनी प्रासंगिक कबीर के समय में थी, उतनी ही आज भी है। आज जिस तरह से मनुष्य का अस्तित्व संकट में है, उसे बचाने के लिए कबीर का वह प्रेम ही चाहिए, जो हर व्यक्ति को, हर व्यक्ति से जोड़ता है, पूरी दुनिया से प्रेम करना सिखाता है, गलत को गलत और सही को सही कहना सिखाता है। बाजारीकरण किस दुनिया में प्रेम का अस्तित्व संकट में है। प्रेम नहीं होगा, तो मनुष्य नहीं होगा, मनुष्यता नहीं होगी। मनुष्य को बचाना है तो कबीर की प्रेम– संवेदना से जुड़ना होगा। प्रेम होगा तो मनुष्य भी होगा, मनुष्यता भी होगी, दुनिया भी होगी और उसकी जरूरतों के लिए एक ऐसी बाजार भी होगी जहां केवल खरीददार की ही नहीं, आदमी की भी पहचान होगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कबीर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ– 127.
2. कबीर वाङ्मयः खंड 3 डॉ0 जयदेव सिंह डॉ0 वासुदेव सिंह पृष्ठ 270.
3. आलोचना प्रधान संपादक– डॉ नामवर सिंह अप्रैल– जून 2000 पृष्ठ–279.
4. कबीर वांङ्गमयः खंड 3 डॉ0 जयदेव सिंह डॉ0 वासुदेव सिंह पृष्ठ 281.
5. कबीर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ– 267.
6. अकथ कहानी प्रेम कीः कबीर की कविता और उनका समय पृष्ठ संख्या–369.
7. वही पृष्ठ–368.
8. कबीर वाङ्गमयः खंड 3 डॉ0 वासुदेव सिंह डॉ0 जयदेव सिंह पृष्ठ–17.
9. अकथ कहानी प्रेम कीः कबीर की कविता और उनका समय पृष्ठ– 368.
10. वही पृष्ठ– 377 से 377 तक।

*****